सुश्री कौमुदी बलदोटा – लिखित
'' 'नारद' के व्यक्तित्व के बारे में जैन ग्रन्थों में प्रदर्शित संभ्रमावस्था'' *
– इस शोधपत्र के बारे में कुछ विचार –

मुनि कल्याणकीर्तिविजय

इस लेख में नारद सम्बन्धी जो कुछ लिखा गया है उस पर कुछ समीक्षा करनी आवश्यक है, ऐसा लगने से यहां पर कुछ विचार प्रस्तुत किए जा रहे हैं ।

पहली बात तो यह है कि, पूरे लेख का विहङ्गावलोकन करने से लगा कि लेखिका को जहां पर भी नारद शब्द पढने-सुनने मिला वहां से उसे उठाकर उन्होंने उसका समन्वय करने का प्रयत्न किया है । उनका प्रयत्न यद्यपि सराहनीय है तथापि इससे यह भी प्रतीत होता है कि उन्हें परम्परा की अभिज्ञता एवं ग्रन्थसन्दर्भों का उचित उपयोगविषयक बोध बढाना जरूरी है ।

'इसिभासियाइं' में जो नारदऋषि (अर्हत् नारद)का अधिकार है वे तो प्रत्येकबुद्ध मुनि हैं । उनका प्रचलित नारद के साथ कोई वास्ता ही नहीं है । फलतः इसके आधार पर यह कहना कि ''श्रोतव्य-श्रवणीय का सम्बन्ध प्रमुखता से नामसंकीर्तन तथा गायन से है'' इत्यादि, यह उचित नहीं है ।

साथ ही, ऋग्वेद के नारद, रामायण के नारद या भक्तिसूत्र के रचयिता नारद से भी इसिभासिआइं के नारद का कोई सम्बन्ध अभी तक प्रस्थापित नहीं हुआ है । वास्तव में तो उन तीनों का परस्पर कोई सम्बन्ध ही नहीं है । केवल नामसाम्य से सब को परस्पर जुडे हुए मानना यह समन्वय की इच्छा का अतिरेक लगता है ।

तथा, ''अनेक परस्परविरोधी मतों का तथा विशेषणों का मिलान

---

* अनुसन्धान-४९ में प्रकाशित

करते हुए उन्हें (जैन ग्रन्थकारों को) जो कठिनाई महसूस हुई, इसी के कारण जैन आचार्यों की संभ्रमावस्था दिखाई देती है ।'' - ऐसा लिखना कुछ जल्दबाजी लगती है । क्योंकि जैन परम्परा में त्रेसठ शलाका पुरुष के अन्तर्गत नौ वासुदेव - बलदेव व प्रतिवासुदेव के समकालीन नौ नारद का भी अस्तित्व स्वीकृत है । और ये नौ नारद, **इसिभासिआइं** के प्रत्येकबुद्ध नारद व **स्थानाङ्ग-समवायाङ्ग-भगवतीसूत्र-तत्त्वार्थसूत्रादि** में निर्दिष्ट नारदों से तथा **ऋग्वेद-पुराणादि** में निर्दिष्ट नारदों से भिन्न ही है । फिर जब इनका परस्पर मिलान ही अप्रस्तुत है तब उसे करने में जैन आचार्यों में संभ्रमावस्था दिखाई देती है - ऐसा कहना कैसे उचित होगा ?

वास्तव में निरे शाब्दिक अध्ययन से व साम्यवैषम्य से कोई विधान किया नहीं जा सकता । ऐसा करने से कभी पूर्वसूरिओं का अविनय होता है और अपने अज्ञान का प्रकाशन भी, जो हमें अनधिकारी बना सकता है।

स्थानाङ्गसूत्र में व **तत्त्वार्थसूत्र** में जिस नारद का उल्लेख है वह व्यन्तरनिकाय की गन्धर्व जाति का देव है । उसका निकायगत स्वभाव ही गान-संगीत का है । (ऋषिभाषित में जो देवनारद ऐसा उल्लेख किया गया है वह प्रत्येकबुद्ध नारद ऋषि की पूज्यता का द्योतन करता है, किन्तु उसका स्थानाङ्गसूत्र के व्यन्तरनिकायगत देव नारद-गन्धर्व के साथ कोई अनुबन्ध नहीं है ।)

तथापि ''नारद का त्रैलोक्यसंचारित्व ध्यान में रखकर उन्हें व्यन्तरदेव कहा है, और, गायनप्रवीणतानुसार उन्हें व्यन्तरदेवों के चौथे 'गान्धर्व' उपविभाग में स्थान दिया है'' - ऐसे लेखिका के कथन से यह मालूम पडता है कि लेखिका के दिमाग में एक बात बैठा दी गई है कि - 'जो नारद होता है (चाहे कोई भी हो, पर नाम से वह नारद होना चाहिए), उसे त्रैलोक्यसंचारी ही होना चाहिए और उसे गायनकुशल भी होना चाहिए । ऐसा होने के कारण वह हर जगह इसी बात का समन्वय येन केन प्रकारेण कर रही है ।

साथ ही, ऋषिभाषित के 'श्रोतव्य' का अन्वयार्थ सुनने योग्य - श्रुतज्ञान से है, नहि कि 'श्रवणीय गायन' से । अतः ऐसे अर्थ निकालना वाज़िब नहीं लगता ।

समवायाङ्गसूत्र में, होनेवाले इक्कीसवें तीर्थंकर के रूप में जिनका उल्लेख किया गया है वे नारद श्रीमुनिसुव्रतस्वामी के तीर्थ में हुए हैं । जब कि कृष्ण वासुदेव श्रीनेमिनाथ प्रभु के तीर्थ में हुए हैं । अब यहां ''नारद इक्कीसवें तीर्थंकर होनेवाले हैं इसका कारण यह हो सकता है कि वासुदेव कृष्ण भावी तीर्थंकर होनेवाले हैं ।'' - ऐसा विधान करना कहां तक संगत है यह सोचना चाहिए ।

और ''वासुदेव कृष्ण का प्रथमतः नरकगामी होना और नारद का न होना एक अजीब सी बात है ।''

- यह खुद एक अजीब सा विधान है । क्योंकि, प्रथम तो जैन शास्त्रों के अनुसार, वासुदेव का जीव 'निदान' कर के वासुदेव बनता है, फलतः उसकी अधोगति निश्चित ही है । दूसरा, वासुदेव अपने भव में भी इतने युद्ध व आरम्भ-समारम्भादि करते हैं कि उनकी नरकगति निश्चित ही है । पर इससे यह कैसे निश्चित हो सकता है कि (वासुदेव के सम्पर्क में आने से) नारद भी नरकगामी हो ! क्योंकि नारद कोई 'निदान' करके तो हुए नहि, ना ही वे कुछ आरम्भ-समारम्भादि बडे पाप भी करते हैं कि जिससे वे नरकगामी बनें !

ऐसी विसंगतियां इस शोधपत्र में और भी हैं, किन्तु सब को बताने का कोई अवसर नहीं है । सार इतना ही है कि ऐसे शोधपत्र लिखने के लिए कुछ अधिक सज्जता हो यह आवश्यक प्रतीत होता है । बिना सज्जता से लिख देने में संशोधकीय विश्वसनीयता को ठेस लग सकती है ।